REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2023

कोरोना महामारी का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

डॉ. ईश्वर सिंह सागवाल,
ऐसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), बाबू अनन्त राम जनता महाविद्यालय,
कौल (कैथल).

वैश्विक महामारीयां अपने समय और भविष्य को प्रभावित करती आई हैं । राजनीति और भूगोल के साथ समाज और साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है । दूनिया जब किसी विपदा से घिरी है तो सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में भी उनका असर हुआ है ।

महामारियों के कथानक पर केन्द्रित अतीत की साहित्यिक रचनाएं आज के संकटों की भी शिनाख्त करती है । ये हमें मनुष्य की जिजीविषा की याद दिलाने के साथ–साथ नैतिक मूल्यों के ह्रास और मनुष्य के अहंकार, अन्याय और नश्वरता से भी आगाह करती है । इतिहास गवाह है कि अपने–अपने समयों में चाहे कला हो या साहित्य,संगीत, सिनेमा–तमाम रचनाओं ने महामारियों की भयावहताओं को चित्रित करने के अलावा अपने समय की विसंगतियों, गड़बडियों और सामाजिक द्वन्द्वो को भी रेखांकित किया है । ये रचनाएं सांत्वना, धैर्य और साहस का स्त्रोत भी बनी हैं, दु:खों और सरोकारों को साझा करने वाला एक जरिया और अपने समय का मानवीय दस्तावेज है ।

समकालिन विश्व साहित्य में महामारी पर विशुद्व कृति 'प्लेग' को माना जा सकता है । कहा जाता है कि अल्जीरियाई मूल के विश्व प्रसिद्व फ्रांसीसी उपन्यासकार 'अल्बैर कामू' अपने उपन्यास 'प्लेग' के माध्यम से नाजीवाद और फांसीवाद के उभार और उसकी भयानकताओं के बारे में बता रहे हैं । इसमें दिखाया गया है कि कैसे स्वार्थों और महत्त्वकांक्षाओं और विलासिताओं से भरी पूंजीवादी आग्रहों और दुष्चक्रों वाली दूनिया में किसी महामारी का हमला कितना व्यापक और जानलेवा हो सकता है, कि कैसे वो खुशफहमियों और कथित निर्भयताओं के विशाल पर्दे वाली मध्यवर्गीय अभिलाषाओं को तहसनहस करता हुआ एक अदृश्य दैत्य की तरह अंधरों और उजालों पर कब्जा करता है । 'प्लेग' उपन्यास का अंश है –''हर किसी को पता है कि महामारियों के पास दूनियां में लौट आने का रास्ता होता है, फिर भी न जाने क्यों हम उस चीज पर यकीन ही नहीं कर पाते है जो नीले आसमान से हमारे सिरों पर आ गिरती है ...। जब युद्व भड़कता है, लोग कहते है, ''ये बहुत बड़ी मूर्खता है ज्यादा दिन नहीं चल पाएगा । लेकिन युद्व कितना ही मूर्खतापूर्ण क्यों न हो, ये बात उसे चलते रहने से नहीं रोक सकती । मूर्खता के पास अपना रास्ता बना लेने का अभ्यास होता है। जैसा कि हमें देख लेना चाहिए, जबकि हम लोग हमेशा अपने में ही इतना लिपटे हुए न रहे ।''

'प्लेग' के माध्यम से कामू समाज की हृदयहीनता को भी समझना चाहते थे । वे दिखाना चाहते थे कि समाज में पारस्परिकता की भावना से विछिन्न लोग किस हद तक असहिष्णु बन सकते है । लेकिन वो आखिरकार मनुष्य के जीने की आकांक्षा का संसार दिखाते हैं । इसी प्रकार कोलम्बियाई कथाकार 'गाब्रिएल गार्सीया मार्केस' का मार्मिक उपन्यास 'लव इन द टाइम ऑफ कॉलेरा', प्रेम और यातना के मिले–जुले संघर्ष की एक करूण दास्तान सुनाता है । जहॉ महामारी से खत्म होते जीवन के समानान्तर प्रेम के लिए जीवन को बचाए रखने की जद्वोजहद एक विराट जिद की तरह तनी हुई है ।

प्लेग, चेचक, इन्फ्लुएजां, हैजा, तपेदिक आदि बिमारियों ने घर परिवार ही नहीं, शहर के शहर उजाड़े है और पीढ़ियों को एक गहरे भय और संत्रास में धकेला है । चेचक को दूनियां से मिटे 50 साल से भी ज्यादा हो चुके है । पिछले कुछ सालों पहले विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस बात का जश्न भी मनाया था । लेकिन 20 वीं सदी के शुरूआती वर्षों में ये भी एक भीषण महामारी के रूप में करोड़ों लोगों को अपना ग्रास बना चुकी थी । रवीन्द्र नाथ टैगोर की काव्य रचना 'पुरातन भृत्य' (पुराना नौकर) में एक ऐसे व्यक्ति की दास्तान पिरोई गई है जो अपने मालिक की देखभाल करते हुए चेचक की चपेट में आ जाता है । सन् 1903 में टैगोर ने अपनी तपेदिक से झूजती 12 साल की बेटी को स्वास्थ्य लाभ के लिए उत्तराखण्ड के नैनीताल जिले के पास रामगढ़ की हवादार पहाड़ी पर कुछ महीनों के लिए रखा था । लेकिन कुछ ही महिनों में उसने दम तोड़ दिया था । चार साल बाद बेटा भी नहीं रहा । टैगोर ने रामगढ़ प्रवास के दौरान 'शिशु' नाम से अलग–2 उपशीर्षकों वाली एक बहुत लम्बी कविता श्रृखंला लिखी थी । 1913 में छपी इन कविताओं के संग्रह का नाम 'अर्धचन्द्र' कर दिया गया था । टैगोर की इस रचना से एक पंक्ति देखिए–अंतहीन पृथ्वियों के समुद्र तटों पर मिल रहे है बच्चे । मार्गविहीन आकाश में भटकते है तूफान, पथविहिन जलधाराओं में टूट जाते है जहाज, मृत्यु है निर्बन्ध और खेलते है बच्चें । अंतहीन पृथ्वियों के समुद्रतटों पर बच्चें की चलती है एक मंथन बैठक ।

इसी तरह निराला ने अपनी आत्मकथा 'कुल्लीभाट' में 1918 के दिल दहला देने वाले 'फ्लू' से हुई मौतों का जिक्र किया है । जिसमें उनकी पत्नी, एक साल की बेटी और परिवार के कई सदस्यों और रिश्तेदारों की जाने चली गई थी । निराला जी ने लिखा था कि दाह–संस्कार के लिए लकड़ियॉ कम पड़ जाती थी और जहां तक नजर जाती थी गंगा के पानी में इन्सानी लाशें ही लाशें दिखाई देती थी । उस बिमारी ने हिमालय के पहाड़ों से लेकर बंगाल के मैदानों तक सबको अपनी चपेट में पूरी तरह से ले लिया था । बेटी की याद में रचित 'सरोज स्मृति' तो हिन्दी साहित्य की एक मार्मिक धरोहर है ।

टाइम्स ऑफ इंडियां अखबार में अभिजित घोष ने प्रगतिशील लेखक आंदोलन के संस्थापकों में एक पाकिस्तानी लेखक, कवि, अहमदअली के उपन्यास 'ट्वाइलाइट इन डेल्ही' का उल्लेख किया है । उपन्यास में बताया गया है कि महामारी के मृतकों को दफनाने के लिए कैसे कब्र खोदने वालों की किल्लत हो जाती है और दाम आसमान छूनें लगते है । इतने बड़े पैमाने पर वो काम हो रहा था कि दिल्ली मूर्दों का शहर बन गया था । प्रगतिशील लेखक संगठन के पुरोधाओं में एक राजिन्द्र सिंह बेदी की कहानी 'क्वारंटीन' में महामारी से ज्यादा उसके बचाव के लिए निर्धारित उपायों और पृथक किए गए क्षेत्रों के खौफ का वर्णन है । यानि एक विडम्बनापूर्ण और हास्यास्पद सी स्थिति ये आती है कि महामारी से ज्यादा मौतें क्वांरटीन में दर्ज होने लगती है ।

फणीश्वर नाथ रेणु के प्रसिद्व उपन्यास 'मैला आंचल' में मलेरिया और कालाजार की विभिषिका के बीच ग्रामीण जीवन की व्यथा का उल्लेख मिलता है । प्रेमचन्द की कहानी 'ईदगाह' में हैजे का जिक्र है । ओडिसा साहित्य के जनक कहे जाने वाले फकीर मोहन सेनापति की 'रेवती' कहानी में भी हैजे के प्रकोप का वर्णन है । जाने माने कन्नड कथाकार यू.आर. अन्नतमूर्ति की नायाब रचना 'संस्कार' में एक प्रमुख किरदार की मौत प्लेग से होती है । 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार से समानित मलंयाली साहित्य के दिग्गज तकषी शिवशंकर पिल्लै का उपन्यास 'थोत्तियुडे माकन' (मैला साफ करने वाले का बेटा) में दिखाया गया है कि किस तरह पूरा शहर एक सक्रांमक बिमारी की चपेट में आ जाता है ।

उधर विश्व साहित्य पर नजर डाले तो कामू से पहले भी लेखकों ने अपने–अपने समयों में बिमारियों और सक्रांमक रोगों का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है । ब्रिटेन के मशहूर अखबार 'द गार्जियन' ने एक सूचि निकाली है । जैसे डेनिपल डेफो का 'अ जर्नल ऑफ द प्लेग इयर' (1722) मेरी शैली का लिखा 'द लास्ट मैन' (1826) और एडगर एलनयो की 1942 में लिखी कहानी 'द मास्क ऑफ द रेड डेथ' । 1947 में कामू का 'प्लेग' 1969 में माइकल क्रिशप्न का 'द एंड्रोमेडस्ट्रेन', 1978 में स्टीफन किंग का 'द स्टैंड' और 1994 में रिचर्ड प्रेस्टन का 'द हॉटजोन' आया । नोबल पुरस्कार विजेता और प्रसिद्व पुर्तगाली उपन्यासकार 'खोसे सारामापों में 1995 में 'ब्लाइंडनेस' नामक उपन्यास लिखा था, जिसमें अंधेपन की महामारी टूट पड़ने का वर्णन है । 2007 में जिमक्रेन ने 'द पेस्टहाऊस' लिखा जिसमें लेखक ने अमेरिका के प्लेग में संक्रमित अंधेरें भविष्य की कल्पना की है । 2013 में डैनब्राउन का 'इफर्नो' और मार्ग्रेट एड़बुड का 'मैडएडम' और 2014, 2015 और 2017 में लोकप्रिय ब्रिटिश लेखिका लुइस बेल्श के 'प्लेग टाइम्स' शीर्षक के तहत तीन उपन्यास प्रकाशित हैं ।

आज के कोरोना समय में जब अधिकांश लेखक बिरादरी ऑनलाइन है तो दूनिया ही नहीं भारत में भी विभिन्न भाषाओं के कवि, कथाकार, सोशल मीडिया के माध्यम से खुद को अभिव्यक्त कर रहे है । डायरी, निबन्ध, नोट, लघुकथा, व्याख्यान और कविता लिखि जा रही है । सम्पूर्ण देश के विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में महामारी से सम्बन्धित विषयों पर वेबीनार करवाए जा रहे है । कही चुपचाप तो कही सोशल नेटवर्किंग वाली मुखरता के साथ । भारत में खासकर हिन्दी क्षेत्र में विभिन्न लेखक, संगठन, व्यक्ति और प्रकाशन संस्थान फेसबुकलाइव, यूट्यूब जैसे उपायों के जरिए लेखकों से उनकी रचनाओं और अनुभवों को साझा कर रहें है । हांलाकि इस काम में प्रकाशित हो जाने वाली हड़बड़ी और होड़ जैसी स्थिति भी देखी जा रही है और अपने–2 आग्रहो और पंसदों के आरोप–प्रत्यारोप लग रहे है और वास्तविक दुर्दशाओं से किनाराकशी के आरोप भी है ।

कोरोना महामारी के संकट ने दूसरी चीजों की तरह साहित्य को भी प्रभावित किया है । कई प्रकाशन बन्द पड़े है । कई किताबें छपने की प्रतीक्षा में है । कई साहित्यिक मंच सूने हो गए है । पुस्तकालय धूल खा रहे है । इसके साथ ही इस वक्त ने साहित्यकारों के सोचने का तरीका और नजरिया भी बदल दिया है । अब महामारी पर कविताएं और कहानियां लिखी जा रही है । अपनी निजी डायरी को 'कोरोना डायरी' या 'लॉकडाउन डायरी' कहा जा रहा है । कहा जा सकता है कि अब बहुत सी साहित्य रचनाओं में कोरोना ही उसका केन्द्र या उसका बिम्ब होगा । खैर यह अलग बात है लेकिन साहित्य की अभिव्यक्ति शायद कभी रूकती नहीं है । जिस तरह से एक व्यापारी की किराना की दूकान फिलहाल बन्द है वैसे साहित्य की अभिव्यक्ति बन्द नहीं हुई है । ऐसे में सोशल मीडिया की भूमिका चाहे वो फेसबुक हो या ट्विटर साहित्य के लिए एक बड़े मंच के तौर पर उभरकर सामने आया ।

इस जानलेवा संक्रमण का यह विनाशक कोरोना काल पीढी–दर–पीढ़ी याद किया जाएगा । इस हकीकत को साहित्यिक रचना धर्मिता से जुड़े लोगों ने बेहद करीब से पढ़ा–सुना–देखा है । उन्होंने लॉकडाउन की अनिवार्यता और उससे उपजी प्रतिकूल परिस्थितियों की पीड़ा पर तीव्र मंथन किया है । स्वाभाविक तौर पर विनाशक कोरोना काल में मंथन से निकली सृजन की सुधा समाज के साहित्य–प्रेमी तबके को तृप्ति दे रही है । अलग–2 माध्यमों से ––––– । पुस्तक नहीं तो फेसबुक के जरिये सैंकड़ों रचनाएं कोरोना वायरस से जंग में जुटे पाठकों को ऊर्जा दे रही हैं । सच तो यह है कि तकरीबन 50 दिनों के लॉकडाउन से फूटी साहित्यिक सूधा में वामपंथ, दक्षिणपंथ और मध्यमार्ग– तीनों ही विचारों की खुशबु है । जो रचनाकार, जिस विचारधारा से है , उसी के अनुरूप रचनाएं कर रहे है । हॉ रचनाओं में आम लोगों का दर्द, व्यवस्था की विवशता, सरकार के खिलाफ आक्रोश– ये सभी पक्ष समाहित है । प्रवासियों के पलायन पर एक क्षणिका में छिपी संवेदना देखिए– पलायतकर्त्ता की तलाशी के लिए, उसके सिर से पोटली उतारी गई, पोटली में से एक साड़ी और दो दर्जनभर चूड़ियॉ निकली । प्रो. हरभगवान चावला की यह रचना प्रवासियों की दशा और व्यवस्था की सोच पर सीधा प्रहार कर जाती है । पलायन की पीड़ा पर उन्होनें अनेको रचनाएं की है । कुछ फेसबुक पर बेहद संजीदे कमेंटस के साथ लाइक की गई है । मुश्किल यह है कि चिन्ता जताने वाले मंच नहीं मिल रहें । समारोहों में पूर्णकालिक सन्नाटा तारी है । षडयंत्र तक नहीं हो पा रहे । यहां आकर लगा कि जब तक क्लेस जिन्दा है, साहित्य बचा रहेगा । पूर्व कोरोनाकाल में जब साहित्य से प्रेम–गीत गायब हो रहे थे, अब उनकी बाढ़ आने वाली है । कविजन कोरोना की जगह विरह–व्यथा से ग्रस्त हैं घर में चैट तक से वंचित है । कोरोना प्रेम–शत्रु साबित हो रहा है । लोग प्रेम तो छोडिए, ठीक से घृणा तक नहीं कर पा रहे हैं । लगता है उत्तर कोरोनाकाल में यह काम भी चमगादड ही करेगे । वैसे असल साहित्यकार को सन्नाटे से घबराने की जरूरत नहीं है, लेकिन उसे सरकारी पैकेज की सख्त जरूरत है ।

हिन्दी साहित्य और कविता विकास में कोरोना काल का अपना अलग महत्त्व होगा । इस युग की महत्ता शोध परिणामों के बाद निश्चित रूप से साबित होगी । इस युग को यादकर भी कोई आलोचक और समीक्षक झुठला नहीं सकता है । अगर वह ऐसा कहता है तो इस काल के साथ बेहद नाइंसाफी होगी । अगर वह ऐसा करता है तो साहित्य के इस काल के साथ समुचित न्याय नहीं कर पाएगा । उसे कोरोनाकाल कभी माफ नहीं करेगा । आने वाले युग में हिन्दी साहित्स के विभाजन काल में आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल के साथ कोरोनाकाल भी जुड़ जाएगा । जिस तरह छायावाद युग का अभ्युदय हुआ उसी तरह कोरोनाकाल भी साहित्य और कविता विकास में अपनी अहम भूमिका निभाएगा, क्योंकि इस युग ने सृजनात्मकता का जो इतिहास लिखा है । सम्भवतः वह किसी काल के लिए सम्भव नहीं था । अभी तक हम सब तीन काल जानते हैं । लेकिन अब

एक और काल जुड़ गया है, जिसका नाम है 'कोरोनाकाल' । तीनों कालों का उपयोग हम अपनी सुविधा के अनुसार करते रहे हैं । अब इस काल का उपयोग हमने कैसे किया है यह लम्बे शोध के बाद साबित होगा ।

हमें इस काल का आभारी होना चाहिए, क्योंकि इस काल में अचानक कवियों की बाढ़ सी आ गई है । अभी तक कहा जाता था कि 'पोयट इज नॉट मेड' यानि कवि पैदा होते है, बनते नहीं हैं । लेकिन इस युग ने इस मिथक को तोड़ दिया है । कवि देश, काल, वातावरण का सामना करते हुए खुद बनते है न कि पैदा होते हैं । अर्थात् कोरोना ने कवि बनाने में इस मिथक को भी तोड़ दिया है । सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग पर यह काल भारी है । इस काल ने हमें जितनी सुविधा दी सम्भवतः किसी युग और काल में यह नहीं मिली होगी और न मिलेगी । इस काल में लोगों के भीतर सुसुप्त ज्वालामुखी जैसी शांत पड़ी योग्यताएं अकस्मात प्रस्फुटित हो चली है । देश की 80 प्रतिशत आबादी तो कवि के रूप में अवतरित हुई है ।

सोशल मीड़िया ने कोरोनाकाल के साहित्य विकास में अहम् भूमिका निभाई है । जिसने कविता और अभिव्यक्ति को इतनी आजादी दी है । हिन्दी के विकास में इस आभासी दूनियां के योगदान का भी उल्लेख होना चाहिए, क्योंकि हिन्दी कविता के विकास में 'वर्चुअल' दूनिया का योगदान नहीं भूलाया जा सकता है । वरना हमारे सम्पादकों की चलती तो 90 प्रतिशत कवि उसमें भी अधिकांश पुरूष मित्रों की तरफ से कोरोनाकाल में लिखी रचनाएं रद्दी की टोकरी में होती या फिर ईमानदार डाक विभाग सखेद का लिफाफा पहुचां चुका होता । हमें कोरोनाकाल के साथ 'एंड्रायड काल' का भी शुक्रगुजार होना चाहिए, क्योंकि यह काल न होता तो पवित्र 'कोरोनाकाल' में इस तरह की कविताओं की रचना नहीं हो सकती थी । भला इनकी सुध कौन लेता । हम चाहते है कि सरकार हिन्दी साहित्य में कोरोना काल का महत्त्व समझते हुए अनगिनत पुरस्कारों की घोषणा करे । यह उन कवियों के लिए बेहद गौरव की बात होगी । कवियों के लिए सरकार और हिन्दी साहित्य एकादमियों को 'कोरोना पद्यश्री' सम्मान के अलावा साहित्य का 'नोबल पुरस्कार' की घोषणा करनी चाहिए । हिन्दी साहित्य में युग को अविलम्ब जोड़ दिया जाए । जिससे आने वाली पीढ़ियों इस युग का अध्ययन करे और शोध प्रकाशित हो सके । वास्तव में 'कोरोनाकाल' में मानव जीवन ने सभ्यता का नया इतिहास लिखा है । जिससे आने वाले युगों में भुलाया नहीं जा सकता है ।

हिन्दी कवि संजय कुन्दन कहते है कि हो सकता है जो आज सोशल मीडिया पर शेयर किया जा रहा है वो साहित्य की कसौटी पर खरा न उतरे और गुणवता में कमतर रह जाए, लेकिन उन्ही के बीच से रचनाएं अवश्य आएंगी जो आगामी वक्तों के लिए संघर्ष, यातना और संशय के घटाटोप से भरे इस भयावह जटिलताओं वाले समय की सबसे प्रखर और संवेदनापूर्ण दस्तावेज कहलाने योग्य होगी ।